

भारतीय कवि

स्थिर चित्र

जगन्नाथ प्रसाद दास

जगन्नाथ प्रसाद दास उड़िया के समकालीन बहुचर्चित कवियों में से एक हैं जिनसे हिन्दी पाठक भी अब अपरिचित नहीं है । उनके अब तक सात कविता-संग्रहों के हिन्दी रूपान्तर पाठकों के सम्मुख आ चुके हैं । उनमें से दो 'लौटते समय' और 'शब्द-भेद' भारतीय ज्ञानपीठ से पहले ही प्रकाशित हैं । प्रस्तुत कृति 'स्थिर चित्र' ज्ञानपीठ द्वारा दो-तीन वर्ष पूर्व आरम्भ की गयी 'भारतीय कवि' शृंखला की एक नयी कड़ी है । श्री दास की आरम्भिक कविताओं में उनका काव्यपुरुष प्रायः आत्ममग्न है । अपने अंतरंग क्षणों का, अपने चेहरे और मुखौटों का, अपनी स्नेहसिक्त हताशाओं, प्रत्यय और अनुरागों का वह विलम्ब आत्मनेपदी रहा है । धीरे-धीरे आत्मलीनता से मुक्त होकर वह रास्ता, रास्ते के लोग, कालाहांडी, बालियापाल कसबे में रहनेवाले छायानटों को अन्दर खींच लेता है । और फिर इन सबको लेकर शब्द का चित्र-शिल्पी स्थिर चित्र ही आँकता है, ताकि सहृदय पाठक सहज एवं निश्छल रूप से उसका साक्षात्कार कर सकें । यहाँ स्वप्न से छुटकारा पाने के लिए वह एक नयी राह तलाशता है, किन्तु उस यथार्थ से भी पुनः स्वप्न में लौटने को बाध्य होना पड़ता है । कौन बाध्य करता है ? क्या वह अबाध्य हृदय है—रक्तमांस का प्राण-पुतला ? स्वप्न से छुटकारा चाहता हुआ काव्यपुरुष फिर क्यों इस रूक्ष यथार्थ से स्वप्न की ओर बढ़ जाता है ?

लेकिन नहीं अब उसका काव्यपुरुष बन्द कमरे में बैठ रहने को तैयार नहीं । वह उस दिशा में आगे बढ़ जाता है जहाँ भाग्य ही प्रताड़ित है, जहाँ सारे भूचित्र समय से परे खड़े होते हैं जो हमारे वर्तमान और चिरंतन भविष्य हैं । 'स्थिर चित्र' उसी मार्मिक भूमि की ओर संकेत करता है ।

प्रस्तुत संकलन की कविताओं में प्रवेश पाने के लिए डॉ. सीताकांत महापात्र का 'प्राक्कथन' पाठक की मनोभूमि के निर्माण में पर्याप्त सहायक बनता है ।

हिन्दी के काव्य-मर्मज्ञ पाठकों के लिए भारतीय ज्ञानपीठ की एक और भेंट ।

स्थिर चित्र

उड़िया मूल
जगन्नाथ प्रसाद दास

रूपान्तर
डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

राष्ट्रभारती
लोकोदय ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक : 558

प्रथम संस्करण : 1993

मूल्य : रुपये 65/-

स्थिर चित्र
(कविताएँ)

उड़िया मूल
जगन्नाथ प्रसाद दास

रूपान्तर
डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
18 इस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नई-दिल्ली-110003

लेज़र टाइप-सेटिंग
सत्या लेजर प्रिंट्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली -110032

मुद्रक
विकास ऑफसेट,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

अविरण शिल्पी: सत्यसेवक मुखर्जी

STHIR CHITRA (Oriya Poems) by Jagannath Prasad Das. Translated into Hindi by Dr. Rajendra Prasad Mishra. Published by Bharatiya Jnanpith, 18 Institutinal Area,Lodi Road, New Delhi-110003. Laser setting by Satya Laser Prints and printed at Vikas Offset, Naveen Shahdara, Delhi-110032
First Edition : 1993 Rs. 65/-

प्रस्तुति

भारतीय वाङ्मय के संवर्धन में भारतीय ज्ञानपीठ के बहुमुखी प्रयास रहे हैं । एक ओर उसने भारतीय साहित्य की शिखर उपलब्धियों को रेखांकित कर ज्ञानपीठ पुरस्कार के माध्यम से साहित्य को समर्पित अग्रणी भारतीय रचनाकारों को सम्मानित किया है, जिससे उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ अन्य रचनाकारों के लिए प्रकाशस्तम्भ बनें । दूसरी ओर वह समग्र भारतीय साहित्य में से कालजयी रचनाओं का चयन कर उन्हें हिन्दी के माध्यम से अनेक साहित्य शृंखलाओं के अन्तर्गत प्रकाशित कर बृहत्तर पाठक-समुदाय तक ले जाता है ताकि एक भाषा का सर्वोत्कृष्ट साहित्य दूसरी भाषा तक पहुँचे और इस प्रकार विभिन्न भाषाओं के रचनाकारों एवं प्रबुद्ध पाठकों के बीच तादात्म्य और परस्पर वैचारिक सम्प्रेषण सम्भव हो सके ।

प्रस्तुत कृति 'स्थिर चित्र' भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा दो वर्ष पूर्व आरम्भ की गयी 'भारतीय कवि' शृखंला की एक नयी कड़ी है । कृतिकार जगन्नाथ प्रसाद दास (अपने मित्रों के लिए मात्र जे०पी०) उड़िया के समकालीन उन बहुचर्चित कवियों में से एक हैं जिनसे हिन्दी पाठक भी अब अपरिचित नहीं हैं । हिन्दी अनुवाद के रूप में उनके अब तक छह कविता-संग्रह —'प्रथम पुरुष', 'कई तरह के दिन', 'अपना-अपना एकान्त', 'लौटते समय', 'शब्दभेद' और 'आह्निक' पाठकों के सम्मुख पहले ही आ चुके हैं । इनमें से दो काव्य-संग्रह —'लौटते समय' और 'शब्दभेद' ज्ञानपीठ से प्रकाशित हैं ।

'लौटते समय' की कविताएँ, हिन्दी के वरिष्ठ समीक्षक श्री केदारनाथ के शब्दों में, शब्द और मौन के बीच एक निरंतर आवाजाही के तनाव से पैदा हुई हैं । अधिकांश कविताएँ एक ध्वनि-बिम्ब या हरकत से शुरू होती हैं और अक्सर एक गहरे मौन में पर्यवसित हो जाती हैं । पर होता यह है कि हर कविता के मौन में पर्यवसान के बाद फिर एक नयी शुरुआत होती है । दूसरे शब्दों में, शब्द से मौन की ओर और पुनः मौन से शब्द की ओर लौटना —यह दोनों प्रक्रियाएँ बराबर चलती रहती हैं :

> 'उत्तर दिये बिना मुक्ति नहीं
> मृत्यु की चिरंतनता से ढूँढ़नी पड़ती है
> जीने की क्षणिक घड़ियाँ'

'शब्दभेद' 'लौटते समय' का अगला चरण है जहाँ आत्माभिव्यक्ति में मनुष्य के असाह हो जाने का चित्रण है । इस असहाय भाव या विवशता के लिए कुछ घटक

तो उसके नियंत्रण के बाहर हैं, दैवीय हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिनका कारण हमीं में से कुछ लोग हैं। ऐसे स्थलों पर मूल्यों और संस्थाओं की विकृतियों को लेकर कवि की व्याकुलता इन कविताओं में स्पष्ट दिखाई देती है।

'स्थिर चित्र' में 'उनकी यात्रा आत्मनेपदी से परस्मैपदी तक, रोमांटिक आवेग से धूसर नित्य तक, अन्तर्निहित इन्द्रधनुष के रंगों से हमारे समय के अघटित विघटन तक है'। यहाँ वास्तविकता स्वप्न से छुटकारा पाने के लिए एक नयी राह तलाशती है किन्तु उस वास्तविकता से भी पुनः स्वप्न में लौटने को बाध्य होना पड़ता है। शब्द-चित्र का यह शिल्पी द्वैत भाव की इस क्रियाशीलता को 'स्थिर चित्र' के रूप में आँकता है ताकि सहृदय पाठक सहज एवं निश्छल रूप से उसका साक्षात्कार कर सके। अस्तु,

जगन्नाथ प्रसाद दास के प्रस्तुत संकलन की कविताओं में प्रवेश पाने के लिए डॉ० सीताकान्त महापात्र द्वारा लिखित 'प्राक्कथन' पाठक की मनोभूमि के निर्माण में पर्याप्त सहयोगी बनता है। इस सहयोग के लिए डॉ० महापात्र के हम हृदय से आभारी हैं। भावानुरूप हिन्दी रूपान्तर के लिए डॉ० राजेन्द्र मिश्र भी अभिनन्दन के पात्र हैं।

सदा की भाँति हमारे सहयोगी डॉ० गुलाबचन्द्र जैन ने इसके मुद्रण-प्रकाशन आदि कार्य में अपने दायित्व का भलीभाँति निर्वाह किया है, उन्हें हमारा साधुवाद। पुस्तक के सुन्दर आवरण-शिल्प के लिए श्री सत्यसेवक मुखर्जी का धन्यवाद।

9 जुलाई, 1993

र० श० केलकर
सचिव

प्राक्कथन

प्रत्येक कविता शब्दों को लेकर एक चित्र आँकती है । प्रत्येक शब्द अर्थ और आवेग का एक विचित्र मिलन-स्थल है । अर्थ जो इतिहास, समाज, समूह और समय को लेकर गढ़ा गया होता है जबकि आवेग व्यक्तिगत है, व्यक्ति के एकांत क्षणों का गहनतम अनुभव । शब्द दोनों को मिलाता है, काल और इतिहास को अपने में समेट लेता है, आवेग के रसायन से नया रंग, नया स्वर प्रदान करता है । एक-एक शब्द गढ़ जाता है कविता का स्थापत्य, काव्य-चित्र ।

जगन्नाथ प्रसाद दास उड़िया कविता में एक परिचित नाम है, जिनकी कविताओं में आवेगमय व्यक्ति-सर्वस्व अनुभव धीरे-धीरे सामूहिक भाग्य के साथ अधिक से अधिक जुड़ता चला जाता है । उनकी काव्य-रचना 'प्रथम पुरुष' में काव्यसत्ता प्राय: आत्म-मग्न है; अपने अंतरंग क्षणों का, अपने चेहरे और मुखौटों का, अपनी स्नेहसिक्त हताशाओं, प्रत्यय और अनुरागों का विलंबित आत्मनेपदी है । धीरे-धीरे आत्मलीनता से मुक्त होकर रास्ता, रास्ते के लोग, कालाहाँडी, बालियापाल क़सबे में रहने वाले छायानटों को वे अपने अंदर खींच लाते हैं; 'ऐतिह्य के देश के अथाह रंग और स्वर की प्रचुरता को, पुरातत्त्व के सूत्र और कोणार्क को अपने अंदर समेटे रहते हैं ।' इन सबको लेकर शब्द का चित्र-शिल्पी स्थिर चित्र ही आँकता है ताकि पाठक उसके रु-ब-रू हो सके निश्छल रूप से, सटीक रूप से । गतिशील चित्र का भुलावा, अदृश्य हो जाने का भाव उसमें नहीं है । यथार्थ को मानो बाध्य करके सामने ही रोक लेती है उनके चित्र-शिल्प की कला । उनकी कविता के पाठक जानते हैं कि कभी उन्होंने अपना परिचय एक प्रभावशाली चित्र-शिल्प के रूप में दिया था । वस्तुत: वे एक स्वयं संपूर्ण कलाकार हैं । कविता, कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, शोधपरक लेख, चित्रकला—उनकी सृजनशीलता की दिग्भूमि बहुमुखी है और प्रत्येक में दूसरी विधा की स्पष्ट छाया विदग्ध पाठकों को दिख जाती है । उनकी कविता में मुझे कहानी कहने की शैली दिखाई देती है, कहानी में कविता पढ़ता हूँ, कविता में चित्रकला की झलक पाता हूँ, नाटक में काव्य-विधा की सूचना मिलती है ।

मुझे लगता है कविता की अवश्यंभावी स्वयंसंपूर्णता और विच्छिन्नता में वे विश्वास नहीं करते । इसीलिए उनकी यात्रा आत्मनेपदी से परस्मैपदी तक, रोमांटिक आवेग से धूसर दैनंदिन तक, अन्तर्निहित इंद्रधनुष के रंगों से हमारे समय के अघटित विघटन तक है :

" रंग-बिरंगे प्रेम काव्य-संग्रह के पन्नों में "

(स्थिर चित्र)

और

"परदे की ओट से छिटककर पड़ रही
सूर्य की नन्हीं किरण बता जाती है
किसी का कोई अपना रंग नहीं होता "

(स्थिर चित्र)

यह रंगहीन सामूहिक-व्यक्तिगत आवेग का भू-चित्र ही 'स्थिर चित्र' काव्य-संग्रह की आत्मा है । रंगहीन प्रात्यहिकता को कविता का एकमात्र भाग्य समझकर स्वीकार लेने के बाद, इंद्रधनुषी आवेग का क्षण-स्थायित्व उपलब्ध होने के बाद, वास्तविकता 'स्वप्न से छुटकारा' तलाशने का विभिन्न चरण बन जाती है । किंतु वास्तविकता से पुनः स्वप्न में लौटना पड़ता है । कौन बाध्य करता है ? क्या यह अबाध्य हृदय है -- रक्त-मांस का प्राण-पुतला ? 'स्वप्न से छुटकारा' चाहता हुआ काव्यपुरुष फिर क्यों रूक्ष वास्तविकता से स्वप्न की ओर बढ़ जाता है ? यही द्वैत विरोधाभासी चेतना 'स्थिर चित्र' संग्रह में देखी जा सकती है । 'अंतिम अंक' कविता में जिस तरह पृथ्वी से बचने के लिए प्रेक्षागृह में आना पड़ता है, उसी तत्परता से स्वप्न से छुटकारा पाने के लिए वास्तविकता में लौट आना ही पड़ता है ।

यही है मनुष्य का भाग्य । प्रात्यहिकता, रंगहीन धूसर प्रात्यहिकता ही नियति है । प्रज्ञा और प्रत्यय से परे टिमटिमाते सांध्य-दीप का हतोत्साह भाव ही नियति है । असंतुष्ट आत्मा का अन्वेषण करते हुए प्रार्थना के अंतस्तल में लौट आना ही नियति है । यह कठोर दंड शिल्पशास्त्र की प्रामाणिकता की तरह है । उसमें आवेग कतई निर्णायक नहीं—

"अब निर्वासन की घड़ी है
अपने में स्वयं आत्मकेंद्रित हो
बंद कमरे में बैठ रहने का समय है"

(अप्रैल)

लेकिन नहीं, अब उनका काव्य-पुरुष बंद कमरे में रहने को तैयार नहीं । रास्ता पसरा होता है 'गली के मुहाने पर निश्चिंत खेलते अभी अभी अनाथ हुए बच्चे' की ओर जो 'एक आकर्षक विषाद की आर्द्रता' लिये अंतस्तल की बालू को भिगो देता है । धूसर निर्जीव इतिहास में एक हरित प्रतिश्रुति अत्यंत सजीव है । पर व्यक्तिगत आवेग का भाग्य क्या है ? 'अबाध्य स्वप्नों को बंद कर दो टिफिन के डिब्बे में ।'

इसके अलावा 'वह आदमी' जो इस पृथ्वी और प्रात्यहिकता की क्रूरता के साथ समझौता करने को कतई तैयार नहीं', अंततः समझ जाता है कि निष्क्रियता एक ऐसा पाप है जिसका प्रायश्चित नहीं ।

'स्थिर चित्र' क्रियाशीलता की सूचना देता है, काव्यपुरुष की तन्मयता को झकझोरकर भाग्य की प्रामाणिकता को प्रकट कर देता है, किन्तु कर्म द्वारा मुक्ति की सीढ़ी फिर भी दूर ही रह जाती है । शायद वह आदमी पृथ्वी से और खुद से खुद का पहला कठोर मुक़ाबला करने से पहले चुक गया होता है । यह आवेगपूर्ण असहायता और उसका अनुभव 'स्थिर चित्र' की दूसरी सीढ़ी है । प्रात्यहिकता का अनुभव ही हमारा भाग्य है, जो इस स्तर से असहायता की ओर खींच लेता है समूह के लिए अनकही सहानुभूतियाँ । काव्यपुरुष फिर भी आस लगाये रहता है —

> ''समय से बाजी लगाकर
> अपनी गणना से
> खदेड़ दो भाग्य को ''

वह भी साहस करता है :

> ''समय से परे खड़े होगे तो देखोगे
> किसी से किसी का विरोध नहीं
> जो नित्य वर्तमान है
> वही है चिरंतन भविष्य ''
>
> (जून अनुचिंता)

'स्थिर चित्र' दोनों सीढ़ियाँ लाँघता उस दिशा में आगे बढ़ जाता है जहाँ भाग्य ही प्रताड़ित है, जहाँ समस्त भू-चित्र समय से परे खड़े होते हैं, जो हैं हमारे वर्तमान और चिरंतन भविष्य । 'स्थिर चित्र' उसी मार्मिक भूमि की ओर संकेत करता है, उसे पुकारता है ।

नई दिल्ली,
17 जून, 1993

सीताकांत महापात्र

अनुक्रम

स्थिर चित्र

स्थिर चित्र

टेबुल पर सबकुछ सजा होता है
जैसे कब्रिस्तान में पत्थरों की कतारें

रंगीन शब्द बंद हैं शब्दकोश में
रंग-बिरंगे प्रेम काव्य-संग्रह के पन्नों में
इंद्रधनुषी धूप में जड़ा रहता है
पेपरवेट के भीतर फूल बना
कलम सिर झुकाए पड़ा रहता है
रास्ते के मरियल भिखारी-सा
चाय का खाली कप तरस खाता है
निष्पाप काग़ज़ की सफ़ेद निर्लज्ञता पर

सचित्र चिंताएँ मँडराती रहती हैं
टेबुल के ऊपर की आयताकार शून्यता में
अस्वच्छ काँच पर छटपटाता है
आत्म निरीक्षण का धूसर प्रतिबिंब
आँखों की उठी दृष्टि लौट आती है
किसी ढूँढ़ते हुए को न पाकर

सभी सजे होते हैं
अपने-अपने स्थान और स्वाभिमान में
फागुन लौट जाता है झरोखे से टकराकर
परदे की ओट से छिटककर पड़ रही
सूर्य की नन्ही किरण बता जाती है
किसी का कोई अपना रंग नहीं होता



बस्ती

अंत में सभी आ पहुँचते हैं यहाँ
समय असमय बिना निमंत्रण के

इतिहास दल-बल लेकर पहुँचता है
विजयस्तंभ बनाते पताका फहराते
इस नामहीन नगण्य बस्ती में
तोरण सजाए विजययात्रा के समारोह में
इतिहास यहाँ आ माँगता है स्वार्थ-त्याग
बलिदान माँगता है खून माँगता है
संग्रामी का खून क्रांतिकारी का खून
बेगुनाह का खून शोषित का खून
इतिहास माँगता है नतमस्तक समर्पण
स्वीकारवशता निष्ठा प्रभुभक्ति

सभ्यता आ पहुँचती है मुखौटा पहन
हाथों में बंदूक और बाइबिल लिये
पूँजी लगाकर उपनिवेश बसाता
महानगर बनाती औद्योगिक क्रांति लिये
कल-कारखानों में धुआँ उड़ाती
लाइब्रेरी टाउनहॉल में भाषण देती
सभ्यता यहाँ बेचती है पीला अखबार
नकली माल चोरी-छिपे बनी शराब अश्लील चित्र
सभ्यता दे जाती है मादकता और यौन रोग
सभ्यता माँगती है सहमति समर्थन श्रमदान
सभ्यता दावा करती है नशा बुरी आदतें
अंधानुकरण और आदेश-पालन

दरिद्रता की सीमारेखा के अंतराल में
खोई जनबस्ती में आकर
गणतंत्र हाज़िर होता है जीप पर सवार झंडा फहराता
पुलिस-बल और जनता का जुलूस लिये
गणतंत्र दावा करता है दस्तखत अँगूठे की छाप
रिश्वत झूठ तालियाँ टैक्स चंदा वोट
गवाह समर्थक गुंडे किराये की भीड़
फूलमालाएँ पोस्टर नारे जय-जयकार जुलूस
मंच माइक लाउडस्पीकर समारोह
जन-विक्षोभ और पुतले

गुमशुम त्रस्त भीरु निरीह
किसी की अच्छाई-बुराई से परे इस गली में
धर्म आता है धूना धूप स्तव स्तोत्र के बीच
कीर्तन और प्रार्थना ध्वनि में
पुरोहित और मुअज्ज़िन की पुकार में
चेहरे पर दाढ़ी लगाकर पगड़ी और टोपी पहन
तिलक चंदन जटाजूट रुद्राक्ष और भगवा डाँटे
एक व अद्वितीय ईश्वर की
सर्वशक्ति और महानता की जय-जयकार करते
धर्म आता है चाकू लाठी हथगोला मशाल लिये
धर्म माँगता है मंदिर मसजिद का ध्वंसावशेष
ग़रीब की मड़ैया टूटी दीवार उधड़ा छप्पर
धर्म माँगता है बलात्कार आगजनी खून
काफ़िर का फटा सिर विधर्मी की अँतड़ियाँ
धर्म छीन लेता है जबरन
सधवा के हाथों से चूड़ियाँ बच्चे से माँ-बाप
कुआँरी की इज्ज़त और चूल्हे से भात की हाँड़ी

वे सब आते हैं और चले जाते हैं

दुबारा आने की धमकी देकर
अखबार की हेडलाइन बदलती है
नये युग का अभिषेक होता है
राजनीति के क्रय-विक्रय के धंधे में
प्रशासन बढ़े दामों में नीलाम हो जाता है
चुनाव के बावजूद पूजा-पाठ के बावजूद
दंगा कर्फ्यू भाषण और इश्तहार के बावजूद
पंचवर्षीय योजना और झूठे वायदों के बावजूद
बस्ती फिर भी बची रहती है
गली के छोर में निश्चिंत खेलते
अभी-अभी अनाथ हुए बच्चे की तरह
जो अब तक धर्म गणतंत्र सभ्यता
या इतिहास से संक्रमित नहीं हुआ



मंदिर

ध्यानमग्न संन्यासी-सा
आसनबद्ध रहता है मंदिर
समय के सर्वदर्शी चँदोवा तले

पार्श्व देवताओं के साथ
पुरोहित परिहास लीन है
कीर्त्तिमुख के कंधे पर बैठा
उद्‌भिद ताकता रहता है निस्पृह

समवेत प्रार्थना स्वर
असहाय शिशु-सा
राह न पा भटकता रहता है
सीढ़ियों से मंडप-चत्वर से वेदी
मंत्र की अवश प्रतिध्वनियाँ
दिक्‌पालकों को छूकर
लौट आती हैं टिक जाती हैं
मूर्त्तिहीन विरक्त आलों में

धूने का धुआँ अवरुद्ध रह जाता है
प्रार्थनाएँ टिकी रह जाती हैं पत्थर की दीवारों पर
समय की मलिन चट्टान
नहीं चमका सकती पूजा के फूल
नैवेद्य कोने-कोने में घूमता फिरता
असंतुष्ट आत्मा की तलाश में
प्रार्थनाएँ लौट आती हैं अंतस्तल तक

प्रज्ञा और प्रत्यय से परे
साँझ की बाती टिमटिमाती रहती है
हतोत्साहित मनोरथ की तरह
गर्भगृह का अस्थिर अँधेरा लिये
विग्रह संतुष्ट और स्वयंसिद्ध रहता है
अपने शिल्पशास्त्र की कठोर प्रामाणिकता में

□

कवि-सम्राट्

तुम क्यों बंद रहते
किसी अकिंचन राज्य की चौहद्दी में
तुम्हारा न्याय संगत प्राप्य था
एक अपार वर्णमाला का भूखंड
जिसका आधार और विस्तार है
अंतर्लिपि बहिर्लिपि सिंहावलोकन
वक्रोक्ति और विरोधाभास में
जिसकी सीमा सरहद
सरोष्ठ निरोष्ठ बना अबना
अनुप्रास यमक और रूपक
तुम्हारा अभिषेक विधि-निर्दिष्ट था
सार्वभौम शब्दों के साम्राज्य में
है वर्णमाला जहाँ सर्वशक्तिमान, तथा
स्वर और व्यंजन परम ब्रह्म

एक जैसी अलौकिक पृथ्वी जहाँ
वर्ण और शब्दों से परे कुछ भी नहीं
जहाँ जीवन है छंदों में विभाजित
अनुचिंताएँ लिपिबद्ध हैं चित्रकाव्य-बंधों में
दिनचर्या व्यवस्थित है राग-रागनियों में
आवेश और अनुभूतियाँ अलंकारबद्ध हैं
मनोभाव समन्वित हैं चौतीसा और पोई में[1]

---

1. अठारहवीं सदी के सुप्रसिद्ध उड़िया कवि उपेंद्रभंज का जन्म राजपरिवार में हुआ था । वे कविसम्राट् के नाम से प्रख्यात हैं । उनकी कविताओं में अलंकार और शृंगाररस प्रधान हैं। अपनी कविताओं में उन्होंने चौतीसा और पोई काव्य-रूपों का प्रयोग भी किया है ।

देह और विदेह के अद्भुत देश में
केलिसदन है केंद्रस्थल शय्या ही संसार
जानु और जघन का प्रभुत्व वहाँ
अधर और रोमावली का आधिपत्य है
संवाद का उत्कर्ष इषिकार में
करज हमेशा ढूँढ़ लेता है उरोज
बातों के बदले फूल फेंक देती है चतुरी
दिन बीत जाता है चाटुकारिता में
चौंसठ कलाओं में गुज़र जाती है रात

वहाँ फूल खिलते हैं केवल
अंग प्रत्यंग की उपमा बनने को
पशु-पक्षी प्रणय के आंगिक हैं
प्रकृति प्रकट होती है शृंगार का रूपक बन
ऋतुएँ केवल बीती रात की स्मृतियाँ हैं
विरह को और तीव्र करना ही
है समय का एकमात्र दायित्व

काव्य के ऐसे अलौकिक साम्राज्य में
रक्त-मांस ही है ऐश्वरिकता शरीर ही धर्म
अंग ही अनंग, देह ही देवता
वक्षोज ही विरुपाक्ष विपरीत ही मोक्ष
सुरति का सारतत्त्व बंध ही निर्वाण

इसीलिए तुमने कविता को
प्रत्याहार कर लिया स्वर्गलोक से
छंदों को छीन लिया धर्म-निग्रह से
देवताओं को निर्वासित कर दिया इंद्रलोक में

अब और कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं
तुम्हीं हो एकछत्र सम्राट्
तुम्हारा ही है सार्वभौम राज ☐

अप्रैल

पृथ्वी धीर स्थिर रहकर
आकाश के चमत्कार को देखती रहती है
शपथबद्ध साक्षी-सी
असमय बादल का रंग बदलता रहता है
समय उबल पड़ता है
अंतर्ज्वाला की गहराई से

घास में कंपन पत्तों में मर्मर
पेड़ आत्मीयता का हाथ बढ़ाता है
स्वयं को मोहमाया से मुक्त कर
रास्ता खोलकर रख देता है खुद को
पुराने पापी की स्वीकारोक्ति - सा
यात्रा के बिना किसी समय-सारणी के
निरुद्देश्य चिंता की रेल गुज़र जाती है
मनस्ताप के खुले मैदान से

और किसी से
संधि हस्ताक्षर की संभावना नहीं
अब निर्वासन की घड़ी है
अपने में स्वयं आत्मकेंद्रित हो
बंद कमरे में बैठे रहने का समय है

हवा में लहरों में बादलों में सपनों में
क्रमशः छिटक जाते हैं
स्वयं को सही रखने के सारे संकल्प
निर्दयी धूप समझ जाती है

वहाँ और कुछ संभव नहीं
सिवाय माटी पानी आकाश और चेतना के

सहसा हवा आकर खिड़की खोल देती है
ताकि अतीत की ओर झाँककर
एकत्र किये जा सकें कुछ नैतिक तात्पर्य



पुरातत्त्व

इतिहास को साथ लिये
शोधकर्त्ता आ खड़ा हो जाता है
समय की अंधाधुंध व्यापकता में
खंडहरों में तलाशता फिरता है
अतीत के प्रमाणपत्र
मिट्टी में दबे मंदिर का कँगूरा
पत्थर के हाथ से छूटा स्तबक
सपने में आदेश मिला अभियान
सोनेवाले के सिर पर साँप का फन
काले घोड़े सफ़ेद घोड़े के टाप
नदी की रेत में बंद घुँघरुओं की आवाज़
मछली के पेट में यादगार की अँगूठी
प्रवासी को पहचानने की निशानी

चारों ओर देख सबसे पूछता है
कब कहाँ कौन किसका
अभिषेक राज युद्ध अश्वमेध
सनद वंशावली अध्यादेश
कोई उत्तर नहीं देता
कोई निष्कर्ष नहीं निकलता
सारे प्रश्न भटकते रहते हैं
युद्ध से भागे सैनिकों की तरह
एकांत से एकांत खुले बंजर में

उन प्रश्नों को दोहराने से
गुफाओं से खोहों से क्षितिज के कोनों से

अगणित सामान्य लोगों की
अतृप्त आत्माओं का अट्टहास
विकट शोर करता निकलता है
टकरा जाता है पत्थरों से पत्तों से शून्य से

उसकी प्रतिध्वनि डोलती-फिरती लौट आती है
आकाश से कहती है मुँह फेर लो
पर्वत से कहती है आँखें मूँद लो
इतिहास से कहती है चुप रह झूठे !

□

बादल

कोई भी बादल दूसरे - सा नहीं
सूर्य के साथ - साथ रंग बदलता है
हवा से टूटता है जुड़ता है
अलग होता है मिल जाता है नया रूप लेता है
अनंत में मँडराता रहता है समय असमय
शून्य में स्थिति और पुष्टि
आकस्मिकता में जन्म मृत्यु पुनर्जन्म

किसे क्या दे सकता है
स्वयं ही स्थितिहीन यायावर बादल
कैसे सांत्वना पहुँचा सकता है
फटी मिट्टी की अगणित तृषार्त आँखों में
कैसे उपशमन ला देगा मृगतृष्णा की रेत में
कैसे संवेदना लाएगा निर्जला हतोत्साह में
कैसे पकड़े रख सकता है
किन आश्वासनों से
उसाँसों से खंड विखंड
गिरते अनंत शून्य को

दुबारा आकाश को देखने पर
सहसा सारे संशय दूर हो जाते हैं
अभय आशीर्वाद से भर जाती हैं सारी खाली जगहें
बादल दिखता है खुद को सजाए
आकांक्षित रूप और आकार लिये
आषाढ़ का प्रथम संदेश सुनाता
धूप के आईने में छाया डालता है

हा-हतोऽस्मि की ज्वाला पर डाल देता है
किंवदंती की करुणामय सूक्तिमाला

बादल लाता है विस्मय का सम्मोहन
मन की गहराई की सूखी शाखा-प्रशाखाओं में
खोंस देता है प्रत्याशा के ताजे फूल
ग्रीष्म के अरण्य में सजा जाता है मर्मराहट
झरने के कल्लोल में दे जाता है मल्हार
हरा जुलूस लिये चला जाता है इंद्रधनुष पर

बादल लाता है अंतरंग सपने का समाचार
बादल लाता है बूँद बूँद सुखद संदेश
सुजला सुफला श्यामलता से भीगी मिट्टी की महक
होंठ हाथ देह का सादर स्मरण
आत्मा को सहलाता है ठंडी हवा से
पहली बूँद पृथ्वी पर पड़ने से पहले
मन में संचरित हो जाता है स्मृति का भग्नांश
बादल-सा जिसका कोई रूप वर्ण लक्ष्य नहीं
है केवल एक आकर्षक विषाद की आर्द्रता
जो सराबोर कर जाती है अंतस्तल के दलदल में

□

वेग ही आवेग

स्वप्न अब मन की विह्वल प्रक्रिया नहीं
अब एक ही गोली में नींद है
मामूली आघ्राण से तिलस्म लोक का पर्यटन

आमोद अब समय सापेक्ष नहीं
स्विच दबाते ही मनोरंजन
सिर्फ़ इक्कीस इंच में
कला और संस्कृति की अबाध गति
हर सेकेंड चौबीस तसवीरें

संपर्क के लिए सान्निध्य नहीं चाहिए
हाथ और आँखों का संपर्क अनावश्यक है
भाषा और वर्णमाला निष्प्रयोजन
टेलीफ़ोन के अशरीरी तीन मिनट ही पर्याप्त हैं

पूजापाठ आह्वान अतिरेक हैं
सभी देवता हाथ की पहुँच में
दियासलाई जलाते ही अग्नि
नल खोलते ही वरुण
बिजली के बल्ब में सूर्य
टेबुल पंखे में मारुत
राकेट में सवार होते ही चंद्र और मंगल

जीवन सत्वर और द्रुतगामी है
शब्द से तीव्र
प्रक्षेपास्त्र से क्षिप्र

मृत्यु सुलभ और सन्निकट है
सहसा हृदय गति थमने-सी
या आतंकवादी की अव्यर्थ गोली-सी



पिकनिक

सारी कार्यव्यस्त घड़ियाँ
बीस किलोमीटर पीछे
डेढ़ घंटे दूर है
दैनंदिनी समय-सारणी
घर छूट गया तीन सपनों के अंतराल में
इस समय ऐसे आश्रय की तलाश है
जो अतीत से बिल्कुल अलग हो

निर्जनता को समर्पित है ऐसा स्थान
जहाँ पाँव तले है घास की चट्टान
ऊपर ताकने पर आकाश की छत
चारों ओर पेड़ की दीवारें
सिवाय पशु-पक्षियों के जहाँ
रास्ते में और कोई ट्रॉफिक नहीं

पर्वत की कोई व्यस्तता नहीं
न कोई व्यस्तता है पत्तों के झड़ने की
सूर्य से कोई विरोध नहीं
क्षितिज के सीमांत पर मलिन चाँद का
कोई जटिलता नहीं
झरने के आलसी प्रवाह
अथवा पशु की मंथर जुगाली में
प्रकाश प्रगल्भ नहीं यहाँ
आकाश धीर स्थिर और उदार है
यहाँ किसी को किसी की प्रतीक्षा नहीं

अब भूल जाओ हिसाब किताब
अखबार की मर्मांतक हेड लाइन
असंपन्न दायित्व के दावे
निश्चित समय की निर्धारित मुलाक़ातें
ऋण चुकाने की विलंबित क़िस्तें
उत्तर की अपेक्षा में जर्जर पत्र
उपयोग की प्रतीक्षा में सिमटे समय को

सब कुछ उतारकर रख दो
पैर से जूते बदन से कपड़े आँखों से काला चश्मा
मन से सारे खेद क्षोभ और ग्लानि
फ्लास्क से उड़ेल दो ईर्ष्या और विद्वेष
सहचरों को मग्न रहने दो
अपने अपने सपनों के मकड़जाले में
पक्षी के डैनों में उड़ जाएँ सारे जंजाल
ताश की गड्डी में फिंट जाए स्वजनता

पलक झपकते ही खत्म हो जाएगा सब
धूप की अंतिम किरण आकर
कलाईघड़ी के मुँह पर चुक जाएगी
कप की अंतिम घूँट चाय का स्वाद
मन में अनायास लौटा लाएगा
किसी विस्मृत हतोत्साहित सुबह को
ट्रांजिस्टर का पुराना गाना याद दिला देगा
अतीत के तिक्त मधुर तीन घंटे
घास से चादर उठा लेने पर
फटे काग़ज़ से छिटक पड़ेंगे
रोंगटे खड़े करनेवाले शीर्षक
पेड़-पत्तों से झाँकेगा अधिकारी का क्रोधित चेहरा
चारों ओर से घेर लेंगे दावेदार

अब नपे-तुले समय का अंत है
कार्य-सूची पर निशान लगा दो
भटकते सुख के टुकड़ों को
फेंक दो झाड़ियों में
जिद्दी सपनों को बंद कर लो टिफिन के डिब्बे में
जूते के तस्मे बाँध लो
उड़ रहे बालों को सँवार लो सतर्क रहो
आगामी कार्यक्रम है सिर्फ़ डेढ़ घंटे बाद



वह आदमी

किसी की कुछ नहीं सुनता
किसी को कुछ नहीं कहता
किसी से कुछ लेना-देना नहीं उसे
भीड़ से बाहर रहकर
चुपचाप रास्ता पार कर जाता है
वह निरीह आम आदमी

कभी जुलूस में शामिल नहीं हुआ
कभी भी नारे नहीं लगाये
कभी कोई विरोध नहीं किया
समाज की परिधि में रहकर
सोचा था इसी तरह बिता देगा जीवन
सीमावर्ती सामान्य सार्वजनिक

लेकिन यह संभव नहीं हुआ
जुलूस से बाहर रहने पर भी
उस पर पुलिस की लाठियाँ पड़ीं
हर दफ्तर में उससे रिश्वत माँगी गई
बस ट्रेन में उसे जगह नहीं मिली
जब वह क्यू के अंत में पहुँचा
राशन दुकान की चीज़ें खत्म हो गई
उसके घर से चोरी होने पर
थाने में रिपोर्ट लिखने से मना कर दिया
ग़लत बिल का पैसा न देने पर
उसके घर से बिजली पानी कट गया

उसकी बेटी-बहन को परेशान करने वाले लड़के
उसी के घर आकर उसे धमकी दे गये

अंत में जब उसने समझा
निष्क्रियता एक पाप है जो प्रायश्चित माँगता है
उसने अपना अधिकार माँगने का निश्चय किया
रास्ते पर जब उसने
विरोध का पहला क़दम बढ़ाया
ग़लत दिशा से आती
म्युनिसिपैलिटी की कचरे की गाड़ी तले
दबकर मर गया बेचारा आदमी
दुनिया से और खुद से
अपना पहला कठोर मुक़ाबला करने से पहले



कोणार्क

यहाँ पर्यटक ही सम्राट् हैं
गाइड हैं इतिहासकार
पुरातत्त्वविद् हैं मूर्तिकार
एलबम में है निर्धारित शिल्पशास्त्र
सारी कारीगरी कैमरे में बंद

प्राचीन गौरव पड़ा रहता है
खाली बस में बिना पहरेदार के
पोस्टकार्ड में बिकती हैं चारुकलाएँ
ऐतिह्य लटका रहता है
सड़क किनारे की दुकान में
परंपरा दब जाती है
पिकनिक के रेत मिले कूड़े में

हवा के ईर्ष्यालु आक्रोश से
खंडित हो जाता है स्थापत्य
जैसे शाम्ब[1] की अभिशप्त देह
ऊपर से पत्थर गिरता है
स्वाभिमान के असहिष्णु दावे से
समुद्र में छलाँग लगाते बालक-सा[2]
सराय घेर लेते हैं आँगन
कालापहाड़[3] का पलटन बन

---

1. शाम्ब : कृष्णा का पुत्र, जिसने कोढ़ से छुटकारा पाने के लिए कोणार्क में तपस्या की थी ।
2. बालक : किंवदंती है कि कोणार्क का मंदिर बनते समय एक मूर्तिकार के पुत्र ने मंदिर के ऊपर से समुद्र में कूदकर जान दे दी थी ।
3. कालापहाड़ : मुग़लकालीन सेनापति जिसने उड़ीसा पर आक्रमण कर अनेक मंदिरों को तोड़ा था ।

बाहर वर्षों की तपस्या व्यर्थ जाती है
झाड़-झंखाड़ों में खो जाती है वंशावली
किंवदंतियाँ जहाजों को पुकारती हैं
समुद्र से निकलकर प्रमाण देने
अथाह रेत में उसका उत्तर नहीं होता
झाँव वृक्ष विद्रूपता भरी सर्वज्ञ हँसी हँसता है

अंतिम बस चली जाने के बाद
पुनः समय का राज शुरू होता है
कोणार्क सिर उठाकर खड़ा हो जाता है
उत्तुंग कला के दिव्य हिमाचल-सा
अपनी कृष्णवर्णी भव्यता में
आकाश से स्पर्धा कर
भू-भाग को पैरों तले रख

बाकी के शब्द मिट जाते हैं
समय की सहर्ष हिनहिनाहट में
पहिये के नीचे चूर-चूर हो जाते हैं
सामान्य सफलता और तुच्छ कृतित्व
फिर से एक आम सुबह तक
शाश्वत कला की समग्र सत्ता को
अलौकिक सारथी उड़ा ले जाता है
महाकाल के दैवीय अंतरिक्ष में

□

मध्याह्न

आकाश के जलते संतुलन में
सूरज कुंठित रहता है
प्रत्यय की अग्निपरीक्षा बन
पक्षी प्रत्याहार कर लेता है
अपने परिवादी डैने
परछाईं चैन की साँस लेती है
आक्रोश के छिन्न-पत्र गिर पड़ते हैं
असंलग्न स्थितियों के खंडहर पर
भयभीत व्यक्ति खिसक जाता है
क्रोध से झलकते रास्तों से

अनायास ही किसी का चेहरा याद आता है
पुराने पाप के स्मारक-सा
अपनी राह भूलकर
सपने में झाँकता है भविष्य
सारी खिड़कियाँ बंद कर देता है
अपने भीतर चला जाता है भगोड़ा

बाहर मृगतृष्णा झलकती रहती है
ग्रीष्म की निष्ठुर हवा आकर
परिणाम को धकियाकर लौटा देती है
पश्चात्तापों के सुप्त कोणों में



ऐतिह्य का देश

न जाने कितनी दूर छूट गया स्वर्णयुग
अब यहाँ जिधर भी देखो
नदियों के दुर्भाग्य की करुण कहानी है
अरण्य और पर्वतों पर आदि-वास की हीन अकिंचनता
मिट्टी में बंध्या अकाल हवा में हा-हतोऽस्मि शोक
दलदल पसर जाता है गंगा से गोदावरी तक

वीरों के वंशधर भूख से छटपटा रहे हैं
जीवन-संग्राम की मीमांसा होती है सूखे धान के खेत में
बाढ़ से उजड़ जाती हैं मंदिर-मालिनी स्मृतियाँ
भावी उत्तराधिकारी हतोत्साहित रहते हैं
गिद्ध नोच लेता है पतितपावन पताका

सारे दंभ दबे हैं किंवदंती तले
मंदिर के गर्भगृह में बंद हैं आत्म प्रत्यय
समृद्धियाँ हैं मरियल अनुश्रुति के अंतराल में
ताम्रपट में है मलिन होता स्वाभिमान
शिलालेखों में मिटती जाती है साहसिकता

टूटे - फूटे वर्तमान पर खड़े होने पर
कोई विश्वास कोई प्रत्याशा
नहीं आती उदास मन में
सामने देखने पर और कुछ नहीं दिखता है
केवल टूटते भवितव्य के शिखर
समय की बिखरी पड़ी जूठन

मंदिर और गढ़-प्रासाद और साम्राज्य का पतन
स्मृतिस्तंभ ताम्रपट ताड़पत्र शिलालिपि

समय की धारा में बहते हुए आकर
असहाय अटका रह जाता है
वर्तमान के नगण्य कोण में
जहाँ आशा और आश्वासन के लिए
बार-बार लौट जाना पड़ता है
इतिहास के आलोकित और मंत्रमुग्ध नेपथ्य में



घास-फूल

आसमान में सिंदूर छिटकने से पहले
ओस सहला जाती है मिट्टी को
बूँद-बूँद कोमल आर्द्रता से
घास-फूल समझ लेता है
करुणासिक्त अँधेरे की आत्मीयता

पहली बारिश सहसा आकर
पृथ्वी पर दौड़ जाती है
नन्हें नन्हें डग बढ़ाती
घास-फूल समझ जाता है
कौन उसे खींचे लिये जा रहा है
किस उदार अदृष्ट की ओर

नर्म धूप उतरती है
घने पत्तों की गोद में
कोमल किरणों पर सवार हो
तितली नीचे उतरती है
घास-फूल को अहसास हो जाती है
अंतरंग प्रकाश की ऊष्मता

घास-फूल नहीं समझता सौरमंडल
सृष्टि-प्रदक्षिणा विषुव
घास-फूल सिर्फ़ समझता है
लाल मखमली कीड़े की स्पर्धा
तितली के पंख से फूटती ज्योति
मुरझाते पत्तों का अंतिम विलाप

मिट्टी को छूता है ऊपर ताकता है
घास-फूल प्रतीक्षारत रहता है
न जाने कब तारों के जाल से
आकाश उस पर लाकर उड़ेल दे
पेड़ पत्ते धूप बारिश अंधकार रोशनी से
सादर इकट्ठा करके लाए
सार्वजनिक स्नेह की कुछ ओस बूँदें



गाँव का श्मशान

दिन में सुनसान मैदान
न कौए हैं न कोयल
चमगादड़ जाप करता रहता है
घने बरगद की डाल पर
बवंडर दौड़ता फिरता है
मृगजल में नहीं घुस पाता

अँधेरा होने पर सब दिखता है
प्रेतयोनियों की आवाजाही
जनश्रुतियों के जीवंत पात्र
जूगनू आकर लुकाछिपी खेलते हैं
अतृप्त आत्माओं के साथ
भूत शहर बसा लेते हैं
फूटी हाँड़ी अर्थी बाँस की
परी-कथाओं की आदर्श सीमा पर

पास का गाँव जब मरा पड़ा होता है
श्मशान में जान आ जाती है
उल्लू बोलता है घुग्घू रोता है
हूँ-हाँ पक्षी की आवाज़ ताल मिलाती है
डायन की दबी-दबी रुलाई से
चुड़ैल आग जलाती है
खोपड़ी से साँप निकल आता है
सारे मैदान में सियार की आवाज़ मँडराती है
कर्मफल की राख की ढेरियों में
प्रायश्चित की धुक्-धुक् आग सुलगी रहती है

बुझी चिताओं के पास अब कोई नहीं
लाश लानेवाले डर से भाग गये
भिनसारे में सब शांत है
कोई तर्क-संगति नहीं कोई औचित्य नहीं
केवल अंधविश्वास और आतंक का राज है
सहमी हुई सुबह की ठंडी हवा
बह जाती है सोये हुए गाँव की ओर
दु:स्वप्न बन समा जाती है निष्पाप नींद में



सायरन

कर्फ्यू लगे शहर में
सहसा बजने लगता है
तीर-सा बिंध जाता है
अस्पताल की दीवारें स्कूल के श्यामपट
पार्क की हरियाली मंदिर की नैष्ठिकता
आम आदमी की अंतरात्मा

कोई प्रतिबंध नहीं
पैनी धार बींध डालती है
परिवार का दैनंदिन आह्निक
शहर की निरीह दैनंदिनी
लाँघ जाती है जीवन का नियमित परिसर
तोड़ डालती है दिनचर्या की सरल गति

मन में भय बो जाता है
कंधे पर बैठ जाता है बोझ बन
पैरों में बेड़ी बाँध जाता है
जीभ पर लगाम लगाता है
ऊपर उठे हाथ की मुट्ठी बंद करता है

सायरन बजता है शोर मचाता
हुँकार भरकर चीत्कार करता
भयभीत आतंकित करता
संचरित हो जाता है
एक गली से दूसरी गलियों तक

अनजाने में घर से बाहर निकला बच्चा
रास्ते में ताली बजाकर हँसता है
सायरन अचानक बंद हो जाता है
अपनी नपुंसकता और पाप-बोध से मुह्यमान
फाँसी चढ़नेवाले मुज़रिम के अंतिम उसाँसों-सा



परकीया

यहाँ कोई स्वत:सिद्ध सत्य नहीं
हमेशा दुविधा और संशय
अँधेरी यमुना की जलधारा-सा
कैसे छंद लिये आता-जाता है
क्या समझता है क्या है क्या चाहता है
प्रश्न करने पर हाँ-ना कुछ नहीं कहता
चुपचाप अपने प्रवाह में व्यस्त रहता है

अब पीछे नहीं लौटा जाता
घर से बाहर डग बढ़ाने पर
पीछे के सारे दरवाज़े बंद
आगे हालाँकि कुछ भी नहीं होता
न रास्ता न अतीत न भविष्य
होती हैं केवल
वर्तमान की रोमांचक यंत्रणाएँ

और कोई इच्छा नहीं होती
सिवाय खुद को समर्पित करने के
और किसी की कोई संगति नहीं
नदी नहीं वन नहीं हवा नहीं
इच्छा नहीं अनिच्छा नहीं पूर्वापर नहीं
सभी जा केंद्रित हो जाते हैं
मन की अंतरतम गहराई में

पाप नहीं पुण्य नहीं
पा जाने में अंतिम आनंद नहीं

पाने के बाद और भी पाने की इच्छा
न पा सकने में शेष निराशा नहीं
केवल और न पा सकने का भय
प्रस्थान नहीं आगमन नहीं
केवल एक चलायमान स्थिति
मृत्यु नहीं जीवन नहीं
है केवल एक अथर्व अग्रगमन

केवल एक सम्मोहित उपत्यका में
पुलकित प्रतीक्षारत रहना
युगपत् आह्लाद और विषाद लिये
नदी के प्रवाह-सा बंशी की धुन-सा
प्रतिफल नहीं परिणाम नहीं
फिर भी जीवन के शून्य स्थान भरे हैं
मन को बेचैन करती स्वप्न स्मृति
संभावना आशा विश्वास उत्तेजना-सी
इंद्रियातीत अवास्तविक चेतनाओं से

□

गरमी के दिन

मई माह का मौन शहर
चारों ओर सुनसान ताला बंद
गर्म हवा उचक-उचककर पुकारती है
प्रत्येक फाँक से
पर कोई किवाड़ नहीं खोलता

धूल धूसरित उपसंहार
छा जाता है अन्य रंगों पर
घंटी की बेसुरी ध्वनि अवरुद्ध हो जाती है
धुएँ से ढकी छत पर
कौआ हाँफते हुए आकर बैठ जाता है
मरियल कुत्ते की चुकती परछाईं में
मृगतृष्णा अकेले में चमकती है
निर्जन चौराहे की अंतिम सीमा पर

आकाश गुमशुम हवा सहमी-सी
टेलीफ़ोन के तार चुप
शब्द होंठों पर सूख गए होते हैं
बवंडर पर सवार हो उड़ती फिरती है
चिलचिलाती दुपहर
बिजली सहसा गुल हो जाती है
कठोर निर्जला निर्णय से
डाकिया चिट्‌ठयाँ फेंक देता है
खीझकर धूल भरी आँधी में

लू आती है लौट जाती है अकेली
सड़क के इस ओर से उस ओर

चुपचाप सोख लेती है बातचीत आवाजाही
कोलाहल दैनंदिनी समय-सारणी
लोगबाग कहीं कोई नहीं
हवा बार-बार सुना जाती है
अपने कंठ में रुकी अंतिम बात
सबकुछ धूल में दबता चला जाता है
सड़क के दोनों किनारों के मिलने की कोशिश
पिघल जाती है औटे हुए डामर में



चाय का कप

केतली में पानी खौलता है
उत्तेजित खून-सा
उसका खौलना चौंका जाता है
प्रतीक्षा की पूर्वाशा को
अनागत सुबहों के लिए

पूर्व पुरुषों के पाप से जर्जरित
पत्तियाँ खुद को सौंप देती हैं
अनुभव के उपकूल में स्थित
जन्मांतर के दावे के समक्ष

मधुरता समा जाती है
तीव्र ऊष्मता में
आरोप के प्रमाण-पत्र ढूँढ़ती
विरोध की वर्णमाला तलाशती

चम्मच एकाकी प्रहरी-सा
इधर उधर ढूँढ़ता फिरता है
इतिवृत्त की अंधी उपत्यका में
पलायमान अंतर्दृष्टियों को

ऊर्ध्वमुखी धुएँ की कुंडली
बार-बार याद दिलाती है
न जाने किस दूर देश से आकर
अनात्मीय चाय-बागान में
क्रीतदासी-सी काम कर रही

लड़की की अनंत पीड़ाएँ
जो कप के आबद्ध घेरे में
संचित संतुलित और सतत अनुभूत हैं



अस्पताल

अब दुनिया को जीत लेने का दंभ नहीं
आँखें खोलते ही दिख जाती है केवल
निर्लिप्त छत की धूसरता
मुरझाए फूल और बासी समय की गंध
पसर जाते हैं समग्र अतीत में
एक निश्चेतक सिंहावलोकन में

सभी शिथिल पड़ने लगते हैं
लगातार न पा सकने की निराशा में
धमनियों में दौड़ते अपहुँच आयास
रक्त में छटपटातीं छोटी-छोटी इच्छाएँ
स्नायु में अवश अधूरी दुराशाएँ
साँसों में कष्ट पा रहे समझौते
गले में अटके अंतर्द्वंद्व

अब कोई नहीं भागीदार भाग्य का
देह पर नर्स का हाथ महसूस नहीं होता
सभी बीजाणु मुक्त हो खिसक जाते हैं निकट से
खाली बोतलों की बची शुभकामनाएँ
प्रेस्क्रिप्शनों की नपी-तुली आयु
सालाइन की बूँद-बूँद संजीवनी
ऑक्सीजन सिलिंडर में बंद भवितव्य

बरामदे में चहलकदमी करता रहता है डॉक्टर
अंतिम निर्णायक की निष्पक्ष भूमिका में
कभी-कभी किवाड़ खोलकर झाँकता है

हवा आकर पूरी देह को कँपा जाती है
पंखा झल जाता है परम करुणा से भरपूर
शांति और शीतलता का अंतिम अभय

अधोगामी देह और कोई भी
महत्तर कारण नहीं तालाश पाती
सिवाय साँस खींच-खाँचकर जीवन को
और कई निस्सार क्षणों तक
बढ़ा लेने की जांतव इच्छा के



बच्चों के गीत

मुझे ऐसा कोरा कागज दो
जिस पर मैं
बच्चों के गीत लिखूँगा

मुझे ऐसा कलम दो
जिससे कोरे कागज पर
मैं बच्चों के गीत लिखूँगा

मुझे ऐसा हाथ दो
जो उस कलम को पकड़ेगा
जिससे कोरे काग़ज़ पर
मैं बच्चों के गीत लिखूँगा

मुझे ऐसा मन दो
जो मेरे हाथ को चलाएगा
जो उस कलम को पकड़ेगा
जिससे कोरे काग़ज़ पर
मैं बच्चों के गीत लिखूँगा

मुझे ऐसा सपना दो
जो मेरे मन को झकझोरेगा
जो मेरे हाथ को चलाएगा
जो उस कलम को पकड़ेगा
जिससे कोरे काग़ज़ पर
मैं बच्चों के गीत लिखूँगा

अब मुझे ऐसी
चेतना की निष्पाप अनुस्मृति दो
जो मेरे सपने में आएगी
जो मेरे मन को झकझोरेगी
जो मेरे हाथ को चलाएगी
जो उस कलम को पकड़ेगी
जिससे कोरे काग़ज़ पर
मैं बच्चों के गीत लिखूँगा



रविवार

बाहर अदृष्ट की चकाचौंध कोलाहल
भीतर श्मशान की गुमशुम निस्तब्धता
रविवार घर में घुस आता है
उद्धत मुँह ऊपर उठाए

रविवार जल-बुझ होता है
फैलता सिकुड़ता है
हँसता-रोता एकाकी बैठा रहता है
श्लथ और सत्वर होता है
चुप रहता है फट पड़ता है

रविवार जम जाता है
अमीमांसित चिंता का बोझ बन
ढेर के ढेर अखबारी पन्नों पर
रविवार घुल जाता है
विलंबित चाय के कप में
उच्चाट उड़ जाता है दोपहर में
शब्दों के फड़फड़ाते डैनों पर सवार हो
नीले निःशब्द के अंतस्तल में

रविवार टूट जाता है
मनोरथ की असफलता से
रविवार मुरझा जाता है
विगत सुख के हल्के स्मरण से
दीवार से गिर पड़ता है पुराने पोस्टर-सा
बुझ जाता है संझा-बाती की निष्प्रभता में

रविवार बीत जाता है शुरू होने से पहले
रविवार चला जाता है एक दूसरे रविवार में

रविवार लाता है अतल आश्वासन
सपना दिखाता है
वर्ष का प्रतिदिन रविवार बन
कानों में कह जाता है
समय बिताने का गोपनीय मंत्र
ध्यानमग्न हो
महाकाल के झूले पर बैठ
रविवार बस
झूलता ही रहता है
झूलता ही रहता है



समुद्र-तट

सारे रास्ते मिट जाते हैं
समुद्र की रेत पर
लहरें मिटा देती हैं सारे चिह्न
किसी काम नहीं आते
बचपन के नक़शे और मानचित्र
अपरिचित नाविक जब
नाव ले चला जाता है
अनजाने सूर्योदय की ओर

इधर-उधर पड़े घोंघों में भाग्य नहीं है
सारे गर्व चूर-चूर हैं उड़ते सूखे पत्तों में
झाँव वृक्ष में लगे हैं हाहाकार के गुच्छे
रेत की ढेरियाँ बैठी हैं वंशागत दु:ख को अगोरे
समुद्र फुफकारता है लौटा देता है निमंत्रण
भूली हुई गाथाओं को
ऊपर उछाल देता है कचरे के साथ

आँखों की जलांतक आकांक्षाएँ जाकर
बीच समुद्र से लक्ष्यभ्रष्ट हो लौट आती हैं
नीले एकांत से बह आता है विपन्न स्वर
भय और रोमांच से भरपूर
नमकीन हवा में कुछ वर कुछ अभिशाप
जलकण भेद जाते हैं मन का सूनापन
सिक्त कर देते हैं
समस्त स्मित स्मरण

स्तूप पर बैठ सोचने पर
बादल घिर आते हैं निर्णायक की कोपदृष्टि-से
टूटे छावन-छप्पर हाथ में सजाए
देशांतर यात्रा की बात सोचने पर
दो बूँद बारिश आकर सचेत कर जाती है
द्वीपांतरित आत्मा की सजल स्थिति

यदि लगे कि समय थम गया
कान के और करीब ले जाकर सुनने से
घड़ी ठीक चल रही होती है टिक् टिक्
समुद्र गरजता होता है
आकाश मुँह बाये चीत्कार करता होता है
लहरें टूटती होती हैं आती-जाती हैं
एकांत से एकांत
अनागत से अनागत



जून - अनुचिंता

(1)

जलकण हाथ की पकड़ में नहीं आते
बादल रूप बदलकर चले जाते हैं
क्या कभी संभव है
सूर्य को लाकर
समुद्र के अनंत में फेंकना

(2)

प्रतीक्षा की झिलमिल बंजर लाँघ
मृगजल चमकता है लक्ष्य स्थल में
खोजी आँखें दौड़ जाती हैं अभीष्ट की ओर
जाकर टकराती हैं प्रतिबिंबित भ्रम से
जहाँ पानी का नामोनिशान नहीं
पक्षी डूबता-उतराता है अपने ही खून में

(3)

धरती उचाट रहती है
बादल के प्रत्येक घटांतर में
बैठी सोचती रहती है
बारिश की आसन्न संभावना
यह बात किंतु घास-फूल को
शुरू से ही मालूम थी

(4)

रात सबसे अधिक खतरनाक है
बहुविध हतोत्साही उपलब्धियाँ लाती है

विभिन्न भयंकर प्रहरों में
अनायास सिद्ध कर जाती है
देह से मधुर यंत्रणा
यंत्रणा से सहज मृत्यु
प्रत्यूष फिर भी लाकर सजा जाता है
न जाने क्यों
सूक्ष्मातिसूक्ष्म जिजीविषाओं को
खुले झरोखों के चौखटों पर

(5)

समय से बाजी लगाकर
अपनी गणना से
भाग्य को खदेड़ दो
नहीं तो देखोगे
तुम कैसी मृत्यु वरण करोगे
उसी एकमात्र चिंता से
तुम्हारा सारा जीवन पूरा हो जाएगा

(6)

तुम व्यस्त रहते हो
दूर देखना है या पास
कल आज या कल
व्यतीत वर्तमान या भवितव्य
पर सब निरर्थक हैं
समय से परे खड़े होओ तो देखोगे
किसी से किसी का विरोध नहीं
जो नित्य वर्तमान है
वही है चिरंतन भविष्य

□

स्टेशन

भीतर घुसने पर एक दूसरी दुनिया है
यहाँ होने का एकमात्र नियामक
प्लेटफॉर्म टिकट के काग़ज़ का टुकड़ा है
संबंधों का हस्ताक्षर ढोती है
दीवार पर लटकी आरक्षण सूची
यहाँ गतिविधियाँ नियंत्रित करते हैं
समय-सारणी के पीले पृष्ठ

प्रतीक्षारत गृहस्थ गले तक आई खीझ
पी जाता है सहजता से
अनचाहे कोयले की सिगड़ी पर खौलती
चाय की केतली का दार्शनिक धुआँ
बिदा हो रही आँखों की तत्पर अस्थिरता
सामयिक अंतराल में तोड़ डालती है
प्रस्थान की आतंकवादी घंटी
आवाजाही की घबरायी अनुशासनहीनता
समानांतर लोहे के पहिये सजा देते हैं
पहुँचने का दुविधाग्रस्त आग्रह

कुली आगे-आगे चलता है
सूटकेस में करीने से सजा भाग्य लिये
जेब का टिकट फिर से टटोलकर
यात्री तय कर लेता है अपना भविष्य
देर से पहुँचा व्यक्ति
अंतिम सीढ़ी पर खड़ा देखता है
ट्रेन आकर रुकती है निर्लिप्त रूप से

सारे चेहरे सारे सामान्य कोलाहल
पुँछ जाते हैं सहसा
सारा प्लेटफॉर्म स्थिर हो जाता है
एक अमूर्त एकाग्रता-सा



आँधी

आँधी आई अप्रत्याशित घड़ी में
रात के अँधरे क्रोध से निकल
आकाश की उत्तुंग धृष्टता से टकराती
बिन पूछे दु:ख-सी अवांछित लांछन-सी
छत उघाड़ती दीवारें थर्राती
पेड़ की शाखाओं पर पैर रखती आँधी आई
अराजकता के निरंकुश प्रत्यावर्तन में

आँधी आई और लौट गई
इतिहास के मामूली लुटेरे-सी
दैवी अभिशाप का हस्ताक्षर लिये
जन्म लेने से पहले कलम से मिटती
कविता की कमनीय पंक्ति-सी
मन के गली-गलियारों में
अँधेरा छा देने वाली
आग की क्षणभंगुर परछाई-सी

आँधी के बाद घर सिर उठाकर खड़ा हुआ
टिकी हुई दीवार के स्पष्ट प्राक्कथन में
गिर पड़ी छत की उग्र उत्सुकता में
पुन: अपनी स्थिति की घोषणा की
अत्याचार से न टूटे
अदम्य मनुष्य के स्मृति स्तंभ-सा
जिसकी विध्वस्त वर्णमाला में
कोई क्षोभ दु:ख पश्चात्ताप नहीं

है एक दीप्तिमान अतीत का गर्व
हवा बारिश उपादानों के बीच
अनुभव और इतिहास का साक्षी लिये
खड़े रहने का अभिमान और दंभ



कलिंग

धौली[1] उपत्यका की सुबह
घोड़ा दौड़ता चला जाता है
टूटे पत्थरों पर से
काल का अदृश्य हाथ
आकाश में लिपिबद्ध कर जाता है
इतिहास की विडंबनाएँ

पठार में जमी रहती हैं
किंवदंतियों की परतें
मिटते शिलालेख
व्यर्थ ही पुनरावृत्ति करते हैं
विजय की संदिग्ध स्पर्धाओं को
लाल मिट्टी जोड़ देती है संवत् से संवत्
वंशानुक्रम को इकट्ठा करते हैं धान के खेत

अंतिम शंखध्वनि की प्रतिध्वनि मिट जाने पर
अनुच्च पहाड़ों के शीर्ष
क्षय-क्षति के हिसाब पर
पूर्ण विराम लगा देते हैं
घास-फूल सिर उठाता है
विजयी पताका-सा
रक्त-सा संचरित हो जाता है
दया नदी का पानी

---

1. धौली : भुवनेश्वर के पास दया नदी के किनारे स्थित पहाड़ जहाँ कलिंग-युद्ध हुआ था ।

साक्षी बन खड़े सारे वृक्ष
पूर्वाशा की ओर संकेत करते हैं
नयी शाखा-प्रशाखाओं के हाथ बढ़ाए

न कोई जीतता है न हारता है
सुबह होने पर
वंशज निकल पड़ते हैं
अपनी-अपनी जीविका के
दैनिक समरांगन में
कलिंग पीछे रह जाता है
भिक्षु की पोशाक पहन
अशोक चला जाता है
अपने निर्वाण की ओर



बचपन

सभी मकान एक-दूसरे का हाथ थामे
कतार बाँधे खड़े थे
मुलायम धूप आकर
बादलों के साथ लुकाछिपी खेल रही थी
चक्रवात जाकर चिपक गया
इमली पेड़ की शाखों में
कौआ सिफ़र ले उड़ गया

धूप भी पड़ रही है बारिश भी हो रही है
ऐसे समय में
पहाड़ा पढ़ने का स्वर खो गया
पाठशाला के टुपुर-टापुर में
बच्चों के गीत की अंतिम लहर में
चकई पंख झाड़कर उड़ गई
जंगली भैंस घुस आई जबरन
अक्षरमाला के पन्नों में
जलछवि पर पनडुब्बी झपट पड़ी
पाटी पर खिल गए तुरई के फूल

इटकली मिटकली लाल-लाल रत्ती
बस्तों में खिलकर गिर पड़ीं
बैलगाड़ी की टेढ़ी-मेढ़ी लीक पर
हरे समंदर गोपी चंदर के खेल में
ममाने की काग़ज़ की नाव डूब गई
गिलहरी ने काट डाली पतंग की डोर

ताड़वृक्ष ने लंबे-लंबे हाथ बढ़ा
छू लिया पहले तारे को
चमगादड़ के डैनों पर चढ़
धुँधली साँझ आकाश से उतर आई
झींगुर के पैरों से छिटक पड़े
ढेर सारे जुगनू
सियार भाई का हुक्के-हो खो गया
मेढ़की बहिन ज़ोर-ज़ोर रोने लगी
ज़िद्दी लड़के ने ज़िद्द की
चंदा मामा को ला गोहाल में बाँधने की

सरग-ससि पकड़ नहीं आया
आकर गिरा नहीं कान्हू की हथेली पर
चाँद से खरगोश कूदकर चला गया।
कछुआ के साथ दौड़ने
रुआँसा बचपन रूठकर चला गया
अग्नाग्नि बनस्त में

खिसकते जा रहे कमल के तालाब में
बचपन डूब गया उसाँसा होकर
बचपन राह भटक गया
झड़बेरी के जंगल में
बवंडर में खो गया
डायन की रोशनी में जल गया
तितली के पंखों में उड़ गया
बचपन चला गया अबोध निष्पाप
गाँव के रास्ते में बैलगाड़ी चढ़
अनजान राज के न लौटने वाले गाँव में



कल रात

कल रात देखा मैंने अँधेरे को
बिन खाये सो गए बच्चे के चेहरे पर
एक-दूसरे से अनजान
आमने-सामने खड़े खिड़की में
मैंने देखा अँधेरे को
अंधे हो पथभ्रष्ट उड़ते
निशाचर पक्षी की निष्प्रभ आँखों में
बिदा ले चले गए हाथ के
मृत्यु-से शीतल स्पर्श में
अपरिचित देह की गोपनीय खानों में

कल रात मैं मिला निस्तब्धता से
कर्फ्यू लगे शहर बस्ती से
पुलिस की जीप चले जाने के बाद
निस्तेज प्रकाशस्तंभ के निर्जीव उसाँसों में
मीलों निर्जन रास्ते के विकल विलाप में
तूफ़ान के बाद समुद्र की लहरों के मौन
और पृथ्वी के गुमशुम रुद्ध आवेग में

कल रात पहचाना मैंने दुःख को भय को
बंधुहीन शहर के निराश्रय गली-गलियारों में
शतछिन्न दुर्गति की अकिंचन असहायता में
भाग्य को साक्षी रख सोये अंध-विश्वास में
पश्चात्ताप के सीमांत पर पाप के घेरे में
न्यूनता को अगोरे रखे खेद और क्षोभ में

कल रात समझा मैंने अवास्तविकता को
चेतन से अवचेतन तक घूमती-फिरती
देह को कर रहा था मन से पृथक्
नींद में दिखा रहा था इंद्रजाल
सुनाता था परी-कथा बच्चों के गीत
झूठी दिलासा देता था कृत्रिम उपसंहार में

कल रात मैंने देखा उदित सूर्य को
चमकीली पोशाक पहने मेरे सामने आकर
भर-भर मुट्ठी संभावना और प्रतिश्रुति की किरणें
मेरे सपनों में फेंककर
छलाँग लगाकर चला गया
सम्मोहित आकाश-शीर्ष में

□

बड़दांड[1] में भिखारी

सड़क के एक छोर से
सड़क के दूसरे छोर तक
है उसके रोग-शोक की पूरी दुनिया
टूटी दीवार की क्रमशः सिमटती छाया
गंदी नाली और बाज़ारू कुत्ते
हैं उसके सुख सपनों का पूरा घर-संसार
चीथड़ों में बँधी है सुरक्षा उसकी
फूटी अलमुनियम की थाली में वर्तमान
खुले टीन के डिब्बे में असंभावित भाग्य

नीलचक्र[2] तक उसकी आँखें नहीं पहुँचतीं
सिंहद्वार उसकी पहुँच से परे है
रथ के पहिये उसे पीछे खिसका जाते हैं
धूप के धुएँ से उसका पेट नहीं भरता
विग्रह नहीं पिघलता उसकी उसाँसों से

फिर भी वह कृतज्ञता जताता है
अपनी अनचाही ज़िंदगी के लिए
जीना ही उसके कृत कर्मों का फल है
हर बार पेट भरना एक दिव्य आनंद
हर बार रोग से न मरना पुनर्जन्म
हर गया दिन एक अलौकिक चमत्कार

---

1. बड़दांड : जगन्नाथपुरी की मुख्य सड़क । इसी सड़क पर रथयात्रा होती है ।
2. नीलचक्र : जगन्नाथ मंदिर के शिखर पर बना चक्र ।

दिन भर के निर्जला उपवास के बाद
वह जानता है उसकी प्राथना अनसुनी नहीं रहेगी
साँझ की आरती के बाद
ईश्वर गाड़ी से उतरेंगे
और जेब से कुछ छुट्टे पैसे निकालकर
वरदान देने की मुद्रा में फेंक देंगे
उसके कृतकृत्य टीन के डिब्बे में



बारिश की रात

आँखों में काले बादल
चेहरे पर गुमशुम आकाश
वही अप्रत्याशित बात
संकेत से बता देने पर
बारिश आएगी सहमे पदचापों से
चुपचाप आहिस्ता और सकुचाकर
आँखों में चमक होंठों पर मुस्कान
मन में अदम्य आग्रह बन

नीरवता जब बोझ बनी
जमी होगी एक-दूसरे पर
अँधेरे को हाथ से छूते ही
बारिश आएगी पैरों में घुँघरू बाँध
शब्द बन स्वर बन प्रतिध्वनि बन
सान्निध्य की उत्कट इच्छा बन

दुविधा और कातरता छोड़
अंत में उसी मंत्र का उच्चारण करने पर
बारिश आएगी बर्छा लिये
संकोच का प्रतिबंध तोड़
बज्र के उद्‌घोष से धरती कँपाती
देह के सीमांत पर प्रलय का संकल्प बन



अंतिम अंक

विदूषक की और कोई भूमिका नहीं
नायक के वीरोचित संवाद खत्म हो गए
खलनायक मारा गया
अँगूठी और रूमाल का रहस्य भी खुला
अब है सिर्फ़ पर्दा गिरने की प्रतीक्षा

पर्दे के पीछे मुर्दे उठकर बैठ गए
तलवार से खून पोंछ दिया गया
सहनायक पोंछ चुके हैं
अपने-अपने चेहरे से
रंग और दुःख की अभिव्यक्तियाँ
नेपथ्य में बाकी के पात्र व्यस्त हैं
बदन से ज़रदोजी की पोशाक उतारने में

दर्शक कलाई-घड़ी देखता है
पट-परिवर्तन से पहले
अपने को मुक्त कर लेता है
मायाजाल के मनोरम बंधन से
भला और कब तक शरण ले सकता है
परीकथा के कारावास में

दुनिया से बचने के लिए
जिस तरह आग्रह से
वह भाग आया था प्रेक्षालय में
अंतिम बार पर्दा गिरने से पहले ही
उतनी ही तत्परता से
यथार्थता में लौट जाता है दर्शक
सपने से बचने के लिए



दूर पर्वत

पत्थर नहीं जंगल नहीं
झाड़ियाँ नहीं पेड़-पौधे नहीं
टेढ़े-मेढ़े रास्ते नहीं
मन में आरण्यक संभावनाएँ नहीं

पर्वत है हिमानी और हिमाचल
दिगंत का दूसरा छोर दूर दूरांतर
सूर्य और ज्ञानोदय मेघ और रहस्य
आश्रम और वानप्रस्थ तपस्या और धव
स्वर्ग यक्ष मेघदूत अरुंधती
ऋषि और हिम-प्रवाह तुषार मानव

पर्वत है सर्व सत्तारूढ़
सिर उठाए खड़ा होता है
पहन लेता है अरण्य का जटाजूट
बर्फ का उज्ज्वल मुकुट
आकाश का औद्धत्य तोड़ देता है
बादलों को नोचता है शिखर पर
सूर्य को पुकारता है धवल अहंकार से

संसार से संपूर्ण मुक्त
उच्चाकांक्षा के उच्चतम शिखर पर
चेतना की चरमबिंदु
कल्पना और मूलतत्त्व से है खुदा
जिससे परे कोई तथ्य नहीं

जिसकी परीकथा की गुफाओं में
जन्म के तमाम रहस्य बंद हैं
पृथ्वी का सामान्य व्यक्ति
उसे समझने की कोशिश करता है
पत्थर से बंद द्वार पर
वह सारा जीवन बिता देता है
विमोचन के अनभ्यस्त मंत्र को
उच्चारण करने के व्यर्थ प्रयास में



दंगा

अलग-अलग ईश्वर आकर
आमने-सामने खड़े हो गए
लाचार बस्ती के सीने पर
अपने-अपने भक्तों की फौज़ लिये

असहिष्णुता अस्त्र बन गया
हाथों में शक्ति दी क्रोध ने
घृणा खींच ले गई आगे
लाचारी के सहज मूल्यबोध को
लुप्त कर दिया शास्त्र के रूढ़िवाद ने

उसके बाद आरण्यक हिंसा का राज
रक्त का नैवेद्य
कटे सिरों का अर्घ्य
जल रहे घरों का धूम
और आर्तनाद की समवेत प्रार्थना

कर्फ्यू लगने पर
ईश्वर लौट गए
अपने अपने निर्धारित स्वर्ग में
एंबुलेंस आकर आहतों को
अस्पताल ले गया
पुलिस की गाड़ी ले गई मृतकों को
शव-परीक्षागार
रोने की आवाज़ और सायरन मिल गए
जलते घरों के धुएँ और बारूद की गंध में

कचरे में पड़े शव को
कोई नहीं देख पाया
वह अनजान व्यक्ति आया था भीख माँगने
वह किस धर्म का है कोई नहीं जानता
अब वह शास्त्र और धर्म से परे है
किंतु उसकी आँखों की मरी पुतलियाँ
अब तक क्षमाहीन-सी ताक रही हैं
काले भविष्य के धुएँ से ढके
पश्चात्ताप रहित स्वर्ग की ओर



प्रत्यागमन

बहुत दिनों बाद घर लौटा
सुनसान खुले मैदान में
अब कहीं कुछ भी नहीं
कोई कहीं नहीं
झिझकते हुए भीतर घुसता है घरवाला
टूटे दरवाज़े से बचता
हाथ में जंग लगी चाभी लिये

पीछे रह गई
उमस भरी दुपहरी की बस
धूल भरी सड़क और झाड़ीदार जंगल
सामने घर खड़ा है
टूटी-फूटी आयु को सँभाले
सिर झुकाए सोचता है किस तरह
देखते-देखते गिर गई आधी दीवार
सिटकनी खुल गई फर्श चटक गया
तसवीर गिर पड़ी दीवार की कील से
मकड़ी ने आकर जाला बना लिया
छत से टूटे टेबुल तक
दरारों में पेड़ निकल आए
दीमक लग गई ताकों में
बारिश ने घेर लिया झाड़-झंखाड़ों से
धूप निगल गई आसपास को

वह आदमी ढूँढ़ता है बचपन के खिलौने
पुरानी चिट्ठियाँ कहाँ रखी थीं याद नहीं

स्मृति में परत-दर-परत घुन
अल्पनाओं पर साँप की केंचुल
रंग उड़ी तसवीर पर उम्र के निशान
टूटे दर्पण पर सब कुछ खंड-खंड

बाहर घिर आए बादलों को देख
वह याद करता है लौटने वाली बस का समय
हाथ में टूटी ईंट और भूली घटनाएँ लिये
समझता है कि अब सँवारा नहीं जा सकता
उजड़ी अवस्थिति के शेषावशेष
बारिश में आँखें गीली
मन में सब धुँधला-सा
कुछ याद नहीं आता
केवल छत के छेद से बूँद-बूँद पानी गिरकर
भर रही है अन्यमनस्क बाल्टी



बारिश के बाद

बादल रोता हुआ चला गया
झुंड के झुंड राह भटके पक्षियों के साथ
सूखी मिट्टी पर छटपटाती
बूँद-बूँद बारिश निश्चिह्न हो गई
मंदिर की अंतिम घंटी की प्रतिध्वनि-सी
पेड़ सिर झुकाए खड़े रहे
मिट्टी पर पहली बारिश की मादक महक
विषण्णता-सी छा गई घास के मैदान में
अपराह्न अब उदास और एकांत है

ऐसे सर्वसहा समय में
पृथ्वी पुनः सँभाल लेती है अपने को
समझौता कर लेती है ऋतुचक्र से
चंपई रंग की धूप आकर पसर जाती है
मेघमुक्त सूर्य का हँसमुख चेहरा चमकता है
पानी की छोटी-छोटी झीलों के दर्पण में
झाड़ीदार जंगल की झिलमिलाती हरियाली पर
तितलियाँ आकर सजा देती हैं
छोटे-छोटे इंद्रधनुष

आकाश किंतु इन सबकी ओर न देख
एकाग्रचित्त और अपलक ताकता रहता है
एक विलंबित बारिश की बूँद
पत्ते की शिरा-प्रशिरा से होकर उतरती है
और झुके हुए पत्र-शीर्ष पर
क्षर भर को दुविधा में रहती है
मिट्टी पर छलाँग लगाने से पहले



कॉफी-हाउस

सही समय आ पहुँचते हैं वे लोग
दिन भर की बेवशी साथ लिये
दिन के साथ समझौता कर लेते हैं
अपनी अपनी प्रिय कुर्सी ढूँढ़कर

प्यालों की खनक समेट लेती है
उनके बौद्धिक तर्क-वितर्क
चम्मच से घुल जाते हैं सांख्य और मीमांसा
तश्तरी स्वीकार लेती है ओजस्वी घोषणाएँ
पेय मिला देता है स्वप्न और सीमांत
छल्लेदार धुआँ सब कुछ समेट लेता है
कोलाहल की मार्मिक अभिव्यक्ति में

माचिस की जली हुई तीली से
अग्निगर्भ क्रांति होती है
बाल सँवारने में गिर पड़ता है राजमुकुट
सत्ता मिल जाती है फर्श पर राख में
उसाँसों से बनती है महाकाव्य की भूमिका
उँगली के निर्देश से खुल जाते हैं सारे अवरोध
चश्मे के उदास शीशों को पोंछ लेने पर
फिर कोई समस्या नहीं रह जाती

सड़क पार के मकान की अल्हड़ लड़की
अंतिम बार खिड़की का पर्दा खींच लेती है
कॉफी-रंगी अँधेरा आकर
ठंडे प्याले के शून्य को भर देता है

बुद्धिजीवी दार्शनिक क्रांतिकारी और कवि
खुद-ब-खुद संतुष्ट और सफलता से भरे
लौट जाते हैं अपनी संकीर्ण गलियों से होकर
अपने अपने इतर जीवन की तुच्छता में



कविता

एक शब्द मन के सुदूर कोने से
झिझकता हुआ बाहर निकला
कलम की नोक पर पैर रख उतरा
संवेदनशील काग़ज़ पर
संकल्प और संभावना के बीच की
स्वल्प-सी दूरी अनायास ही लाँघ

उसने एक और शब्द को बुलाया
हरेक शब्द बुला लाया
और एक-एक शब्द
सारे शब्द आकर काग़ज़ पर
पंक्ति बाँध खड़े हो गए
कंधे से कंधा मिलाए
एक-दूसरे का हाथ थामे
अपने-अपने स्वतंत्र जन्म और तात्पर्य के
समस्त अधिकार पीछे छोड़ते हूए

अब यहाँ प्रत्येक शब्द
अन्य शब्दों को समर्पित है
अब किसी का कोई पूर्व-पर नहीं
शब्दों ने बाँट लिये आपस में
अपने विभिन्न जन्मों के सुख-दुख
शब्दों ने एक-दूसरे को खींच लिया
एक स्वच्छंद परिसमाप्ति की ओर

शब्दाकीर्ण काग़ज़ पर अब
पंक्तियाँ प्रतीक्षा से अस्थिर हैं
कब किसी की संवेदनशील आँखें
अनायास आकर ढूँढ़ेंगी
उनके विन्यास की अपूर्व व्यंजना
जो स्वयं को बार-बार सजा रही होगी
नये-नये विलक्षण विस्मय से



तैयारी

उनसे मेरी भेंट होगी
उसी की तैयारी में मैंने जन्म लिया
शैशव यौवन बिताए
संगी साथी प्रिय परिजन घर-संसार
जीविका और दायित्वों का निर्वाह किया
हँसी रुलाई रोग शोक देश परदेश से गुज़रता
वयस्क हुआ अनुभव प्राप्त किए
फिर किसी अज्ञात अभीष्ट की खोज में
लक्ष्य-हीन -सा दर-दर भटका
और अंत में राह बदलकर एक दिन
संग्रहालय में जा पहुँचा
जहाँ मेरी उनसे भेंट हुई

किंतु इससे बहुत पहले
जब सारे विश्व-ब्रह्मांड में
कहीं कुछ भी नहीं था
एक प्रचंड विस्फोट से
पृथ्वी की उत्पत्ति हुई
सृष्टि के विकास-क्रम से
जीवन संचार हुआ मनुष्य ने जन्म लिया
साम्राज्य युद्ध अकाल महामारी
और अंधे युगों से होकर
सभ्यता और संस्कृति आई
जनपद और शहर बसे
सृजित हुए कला और विज्ञान
उद्योग और स्थापत्य

साहित्य और संगीत
गढ़े गए मंदिर गिरजाघर
सभागृह ग्रंथागार
और संग्रहालय

उनसे मेरी भेंट होगी
सब है केवल उसी की तैयारी





भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक-साहित्य का निर्माण



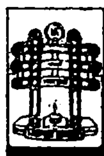
जगन्नाथ प्रसाद दास

उड़िया के समकालीन बहुचर्चित कवियों में से एक नाम है जगन्नाथ प्रसाद दास (अपने मित्रों के लिए मात्र जे.पी.) जिनसे हिन्दी पाठक भी अब भलीभाँति परिचित हो चुका है। उनके अब तक उड़िया में आठ कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से सात के हिन्दी रूपान्तर हिन्दी पाठकों के सम्मुख भी आ चुके हैं । अंग्रेज़ी में भी उनके चार काव्य-संग्रह प्रकाशित हैं । उड़िया कविता-संग्रह 'आह्निक' को 1991 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया । इससे पहले भी भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित उनके 'लौटते समय' और 'शब्द भेद' कविता-संग्रह का हिन्दी पाठकों एवं काव्य-मर्मज्ञ समीक्षकों ने व्यापक स्वागत किया है ।

कला-इतिहास में पी-एच. डी. श्री दास मूलतः कवि होकर भी प्रसिद्ध नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार हैं । साहित्य और कला के अलावा फ़िल्मों में भी उनकी गहरी रुचि है । राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह तथा अंतर्राष्ट्रीय बाल फ़िल्म समारोह के वह ज्यूरी मेम्बर रह चके हैं । 1984 में भारतीय प्रशासनिक सेवा से स्वैच्छिक सेवा-निवृति लेकर निरन्तर सारस्वत साधना में संलग्न हैं ।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

उड़िया से हिन्दी में प्रकाशित पच्चीस से अधिक कृतियों के सफल अनुवादक व मौलिक रचनाकार । जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. तथा फणीश्वरनाथ 'रेणु' व गोपीनाथ महान्ति के कथा-साहित्य में आंचलिकता विषय पर पी-एच. डी. उपाधि। 1980 से राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में सक्रिय। सम्प्रति, नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन लि., नई दिल्ली के वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी ।



भारतीय ज्ञानपीठ

18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003